Vol.8 September 2014 No.3
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

हिन्दी विशेषांक

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

बस कर्म किए जा

–डॉ. सी. एल. वार्ष्णेय

ये जीवन अनमोल खजाना,
सन्तों ने इस सच को जाना।
कहते फल यह ुभ कर्मों का,
कहीं कभी यह सत्य भुला ना।।

गीता में श्री योगीराज ने,
अर्जुन को उपदे ा दिया यह।
करो कर्म तजि राग–द्वेष मन,
चलो धर्म निज योग दिया यह।।

यह ारीर तो आना–जाना,
भ्रमित करे सब ताना–बाना।
कोई नहीं किसी का अपना,
है सच्चाई भटक न जाना।।

करो कर्म निष्काम भाव से,
परम तत्व का मरम यही है।
यही सत्य है सच पहचानो,
कर्म योग का चरम यही है।।

क्या लाये थे जब आये तुम,
क्या ले जाओगे साथ वहाँ?
कृत कर्म तुम्हारे साथी थे,
और कर्म रहेंगे साथ वहाँ।।

कैसे–कैसे निज कर्म किये,
बस यही करेंगे निर्धारण।।
क्या खोया, क्या पाओगे,
यह गणित बड़ा है साधारण।।

क्यों गर्व करो इन महलों पर,
कब ढह जायें कुछ कथ्य नहीं।
यह परदा माया–ममता का,
मानव–जीवन का सत्य नहीं।।

बस कर्म किये जा, करता जा,
जनहित के औ, जनसेवा के।
बस यही रहेंगे साथ वहाँ,
निष्काम कर्म पर–सेवा के।।

पुष्पांजलि, 112 प्रीमियर नगर
कालोनी, अलीगढ़

आलस्यं हि मनुष्याणां ारीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति।। *–भर्त. नीति–80*

आलस्य मनुष्य के ारीर में बैठा हुआ उसका सबसे बड़ा ात्रु है। उद्यम के समान मनुष्य का और काई मित्र नहीं है। उद्यमी मनुष्य जीवन में कभी दुःखी नहीं होता। ई वर को भी वे ही लोग प्राप्त करते हैं जो कर्म ील हैं, जिनके जीवन में जागति है, जो सदा सावध ाान रहते हैं।

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta
V.President
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer

Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan
Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062

Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

Brahmarpan September 2014 Vol. 8 No.3
भाद्रपद–आ विन 2070 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. बस कर्म किए जा 2
–डॉ. सी. एल. वार्ष्णेय
2. संपादकीय 4
3. सांख्य द र्न 7
–डॉ. भारत भूषण
4. आत्म–यज्ञ के होता बनें 8
–महात्मा चैतन्यमुनि
5. ि ाक्षा में अंग्रेजी माध्यम का दुष्प्रभाव
–महात्मा गाँधी 13
6. भगवद्गीता में आई त्रिपुटियों (तीन की गणना) का विवेचन 19
–डॉ. भवानीलाल भारतीय
7. दयानन्द, राष्ट्रीय एकता और हिन्दी 22
–श्री विष्णु प्रभाकर
8. पूरी दुनिया हिन्दी की तरफ देख रही है 27
–अनीता वर्मा
9. हिन्दुस्तान में हिन्दी की दुर्द ा 30
10. Science Behind Pranayama 32
-Anil Rajvanshi
11. Importance of Sanskrit 35
-A.P.J. Abdul Kalam

संपादकीय

सभी भारतीय भाषाओं की लिपि देवनागरी हो।

सन् 1947 में भारत स्वाधीन हुआ और 1950 में नवोदित राष्ट्र की आकांक्षाओं के अनुरूप संविधान बनाने का नि चय किया गया। संविधान निर्माताओं ने संघ की राजभाषा के संबंध में भी सूझ–बूझ भरी व्यवस्था की और उन्होंने देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को राजभाषा बनाया। परन्तु परिस्थितियों ने हिन्दी भाषा के राजभाषा बनने में अनेक बाधाएँ उत्पन्न कर दीं जिसके कारण हिन्दी आज भी अंग्रेजी का स्थान नहीं ले सकी। ऐसी स्थिति में लिपि को आगे बढ़ाने का प्र न ही कहाँ था?

वस्तुतः दे ा की भाषाओं को परस्पर जोड़ने में देवनागरी लिपि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसके लिए हमें लिपि के इतिहास पर नज़र डालनी होगी।

देवनागरी लिपि का विकास मूलतः सिंधुघाटी (इंडस) लिपि और ब्राह्मी लिपि से हुआ है जिसका प्रयोग संस्कृत भाषा के लेखन के लिए प्राचीन काल से किया जाता रहा है। इसी ब्राह्मी लिपि से सभी भारतीय लिपियों का विकास हुआ। ब्राह्मी लिपि अ ोककालीन ि ालालेखों में मिलती है जो ईसा से छह ाताब्दी से तीन ाताब्दी पूर्व के हैं। इसी ब्राह्मी लिपि से बाद में उत्तरी और दक्षिणी ैलियों का विकास हुआ। आधुनिक देवनागरी लिपि का उद्भव उत्तरी ैली से हुआ है। इसका प्रयोग दसवीं ईसवी ाताब्दी से मिलता है। ब्राह्मी की दक्षिणी ैली से 1. तमिल लिपि, 2. तेलुगु व कन्नड़ लिपि, 3. ग्रंथ लिपि, 4. कलिंग लिपि आदि का उद्भव हुआ।

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता : देवनागरी लिपि अत्यन्त वैज्ञानिक और उत्कृष्टतम लिपि है। इसमें जैसा बोला जाता है

वैसा ही लिखा जाता है अर्थात् इसमें ध्वनि के अनुरूप वर्णों के लेखन में सामंजस्य है। एक ध्वनि के लिए एक ही संकेत है। रोमन वर्णों की तरह इसमें छोटे व बड़े (Small & Capital) वर्णों के पथक् रूप नहीं हैं।

प्राचीन भाषाओं संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रं ा का संपूर्ण साहित्य देवनागरी में मिलता है। हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, नेपाली भाषाएँ भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। जबकि गुजराती, पंजाबी, बंगला, असमिया, तमिल आदि लिपियों में देवनागरी लिपि से थोड़ा-बहुत अन्तर है। समय के साथ हिन्दी में विदे ाी ध्वनियाँ के आने से नए ध्वनि चिह्नों की आव यकता पड़ी जिसे केन्द्रीय हिन्दी निदे ाालय, भारत सरकार ने 'देवनागरी लिपि तथा वर्तनी का मानकीकरण' नामक पुस्तिका में विस्तार से प्रस्तुत किया है।

इस दष्टि से विचार करें तो भारत की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जा सकता है। सभी भारतीय भाषाओं की ाब्दावली में पर्याप्त समानता है और उनमें संस्कृत के पर्याप्त ाब्द कुछ उच्चारण की भिन्नता के साथ मिले हुए हैं। जैसे यूरोप में प्रत्येक दे ा की भाषा तो भिन्न-भिन्न है, परन्तु उनकी एक ही लिपि रोमन है इसलिए वे परस्पर भाषा व्यवहार आसानी से कर लेते हैं। इसी प्रकार हम भारत में भी देवनागरी लिपि का सभी भाषाओं के लिए प्रयोग करके विभिन्न भाषाओं के साहित्य का एक दूसरी भाषा में आसानी से अनुवाद कर सकेंगे इससे परस्पर साहित्य का आदान-प्रदान हो सकेगा और सभी भारतीय भाषाएँ एक दूसरे के निकट आ सकेंगी।

विभिन्न विद्वानों द्वारा देवनागरी लिपि का समर्थन-

बंगाल के प्रमुख सुधारक ई वरचन्द विद्यासागर ने देवनागरी लिपि को एक अतिरिक्त लिपि के रूप में स्वीकार करने की

अपील की थी। बंगाल के ही के ावचन्द्र सेन ने स्वामी दयानन्दजी से अपने भाषणों में हिन्दी का प्रयोग करने की सलाह दी थी जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इससे पूर्व वे संस्कृत में भाषण देते थे। सन् 1905 में नागरी प्रचारिणी सभा के अधिवे ान में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने भाषण में सभी भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि अपनाने की जोरदार वकालत की थी। प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् जस्टिस वी. कृष्णस्वामी अय्यर ने सन् 1910 में इलाहाबाद में संपन्न संयुक्त लिपि कांफ्रेन्स में देवनागरी लिपि को सब भाषाओं के लिए अपनाने का समर्थन किया था।

अपनी मत्यु के कुछ समय पूर्व जवाहरलाल नेहरु ने स्वीकार किया था कि हमें एक न एक दिन संयुक्त लिपि को अपनाना होगा। इसका अर्थ भारतीय भाषाओं की वर्तमान लिपियों के लिए एक लिपि को अतिरिक्त लिपि के तौर पर अपनाना है। इसे संपर्क लिपि कहा जा सकता है। वास्तविक कठिनाई भाषा की नहीं अपितु लिपि की है।

10 से 12 अगस्त 1961 को दिल्ली में सभी मुख्यमंत्रियों की त्रिद्विवसीय बैठक में सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि राष्ट्रीय एकता के लिए संपर्क लिपि के रूप में देवनागरी को अपना लेना चाहिए, भले ही ऐसा करना अभी कठिन है।

अंत में सभी भारत प्रेमियों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपने राजनीतिक, प्रादे ाक मतभेदों को भुलाकर राष्ट्रीय एकता और सभी भाषाओं की समद्धि के लिए एक अतिरिक्त लिपि के रूप में देवनागरी लिपि का समर्थन करें।

संपादक

सांख्य द र्शन (अध्याय–1, सूत्र–81)

–डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

कार्य की उत्पत्ति में उपादान कारण की विद्यमानता के हेतु की पुष्टि के लिए सूत्रकार अगला सूत्र प्रस्तुत करते हैं। सूत्र है–

सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात्।।81।।

अर्थ– (सर्वत्र) सब स्थानों (कारणों) में (सर्वदा) हमे ।ा (सभी समयों में) (सर्व असंभवात्) सबकी (उत्पत्ति) संभव न होने से।

भावार्थ– सब कारणों से सभी समयों में सब वस्तुओं की उत्पत्ति संभव न होने से कार्य की उत्पत्ति के संबंध में उपादान का नियम होना आव यक है, क्योंकि इस विषय में किसी भी नियम के अभाव में प्रत्येक कारण से प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति संभव हो जाएगी, जबकि ऐसा होता नहीं है। इसके विपरीत वस्तुतः जो कार्य जिस कारण में विद्यमान होता है उसी कारण से इससे संबंधित कार्य की उत्पत्ति होती है। इसलिए किसी कार्य की उत्पत्ति से पूर्व उसके कारण में उस कार्य का सद्भाव (अस्तित्व) होना सर्वथा युक्तिसंगत है।

इस हेतु से यह स्पष्ट होता है कि किसी कारण से पूर्व (सत्) विद्यमान कार्य की ही उत्पत्ति होती है, असत् (अविद्यमान) वस्तु की नहीं।

सी–2ए, 16/90 जनकपुरी,

नई दिल्ली–10058

BRAMARPAN ON WEBSITE

WE ARE HAPPY TO STATE THAT THE ISSUES OF OUR MONTHLY JOURNAL BRAHMARPAN ARE NOW ALSO AVAILABE ON THE WEBSITE **www.thearyasamaj.org** of DELHI ARYA PRATINIDHI SABHA.

आत्म–यज्ञ के होता बनें

–महात्मा चैतन्यमुनि

वेद में यज्ञ को ब्रह्माण्ड की नाभि कहा गया है– **'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।'** जिस दिन यह त्याग और परोपकार की भावना वि व में समाप्त हो जाएगी उसी दिन से समूचे ब्रह्माण्ड की व्यवस्था गड़बड़ा जाएगी 'यज्ञ' ब्द का भाव बहुत व्यापक है। महामना याज्ञवल्क्य जी कहते हैं–**'अथ ह स देवयाजी यो वेद देवानेवाहमिदं यजे। देवान् सपर्ययामीति। स यथा श्रेयसे पापीयान् बलिं हरेत्। वै यो वा राज्ञे बलिं हरेत्। एवं सः। स ह न तावन्तं लोकं जयति यावन्तमितरः।'** अर्थात् जो व्यक्ति केवल यही जानता है कि मैं देवों का यजन करता हूँ, देवों की पूजा करता हूँ क्योंकि इनके यजन से मैं अनेक प्रकार के सुखों को प्राप्त होऊँगा वह व्यक्ति तो ऐसा ही है जैसे कोई हीन पुरुष अपने से बड़े को उपहार दे या कोई वै य राजा को कर प्रदान करे। इस प्रकार का बनिया बुद्धि वाला देवयाजी आत्मयाजी जैसी दिव्यता को प्राप्त नहीं कर सकता है। मगर यदि ऐसा देवयाजी अपनी आत्मा को उस यज्ञकर्म से संस्कारित कर लेता है तो वही देवयाजी आत्मयाजी बन जाता है – **'स ह वा आत्मयाजी–यो वेदेदं मेऽनेनाङ्गंः संस्क्रियते इदं मेऽनेनाङ्ग–उपधीयत इति।** अर्थात् यह देवयाजी ही नि चतरूप से आत्मयाजी हो जाता है जो जानता है कि इस यज्ञकर्म में मेरी आत्मा का यह भाग संस्कृत होता है.... दोषरहित होता है। आगे वे कहते हैं कि इस प्रकार से यज्ञ की भावना को ग्रहण करने वाला वह व्यक्ति **'स यथा अहिस्त्वचो निर्मुच्यते एवमस्मात्मार्त्याच्छरीरात् पाप्मनो निर्मुच्यते। स ऋङ्मयो यजुर्मयः साममय आहुतिमयः स्वर्गलोकमभिसम्भवति।** जैसे साँप केचुँली से निर्मुक्त होकर सुख के साथ विहार करता है उसी प्रकार यह

आत्मयाजी इस मरणधर्मा ारीर से होने वाले सब पापों से निर्मुक्त हो जाता है। वह ऋचाओं के ज्ञान को आत्मसात् करके यजुमन्त्रों के निर्दे ाानुसार ाुभ कर्मों से पवित्र होकर, साम मन्त्रों के पावन ज्ञान से पूर्ण ाान्त होकर स्वयं को परमात्मा के महान परोपकार धर्म रूप यज्ञ के लिए आहुति रूप बनाकर परमानन्द तथा कल्याणकारी लोक को प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण जी इस व्याख्या को 'ज्ञान-यज्ञ' तक पहुँचाते हुए कहते हैं-**श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।** सर्व **कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते। (गी.4-33)** हे परंतप अर्जुन! 'द्रव्य-यज्ञ' जिसका सबसे पहले वर्णन किया गया है, उसकी अपेक्षा 'ज्ञान-यज्ञ' जिसका सबसे अन्त में वर्णन किया है, अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि सब कर्म जाकर 'ज्ञान' में समाप्त हो जाते है। **यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर। सहयज्ञाः प्रजाः सष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।**

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः। यज्ञ ािष्टा ानः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः। भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। (गी.3-9 से 13) यह बात तो सत्य है कि यह सारा संसार कर्म के बन्धन में डालने वाला है मगर इस बन्धन के डर से हम कर्म का ही त्याग कर दें यह बात अच्छी नहीं क्योंकि जो कर्म यज्ञार्थ अर्थात् यज्ञ की भावना से किया जाता है उसमें बन्धन नहीं होता। इसलिए हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! मुक्त संग होकर अर्थात् कर्म की आसक्ति छोड़कर, सदा कर्म करते रहो। (यज्ञ की भावना से किये गये कर्म से कर्म का बन्धन नहीं होता) प्रजापति ने प्राचीन काल में प्राणियों

को यज्ञ की भावना के साथ उत्पन्न किया था और कहा था कि जैसे मैंने तुम्हें यज्ञ की भावना से उत्पन्न किया है वैसे तुम भी यज्ञ की भावना से ही सांसारिक सूत्रों को चलाओ। यदि तुम इस भावना से ही प्रत्येक कर्म करोगे तो यह यज्ञ तुम्हारे लिए 'काम-धुक्' होगा...... तुम्हारी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करेगा। इसी क्रम से मिली यज्ञ भावना से ही तुम अपने-अपने देवों, बड़े-बुजुर्गों के साथ व्यवहार करो और देव, बुजुर्ग लोग भी तुम्हारे साथ इसी यज्ञ की भावना से बरतें। इस प्रकार एक-दूसरे के साथ यज्ञ की भावना से बरतने से तुम सब परम कल्याण को प्राप्त करोगे। यज्ञ की भावना से प्रसन्न होकर देवता, तुम्हारे पूजनीय बड़े लोग इच्छित पदार्थों को देंगे। देवों, बुजुर्गों के दिये हुए इन पदार्थों का भाग अगर दूसरों को दिये बगैर कोई अकेले ही इनका भोग करता है तो वह चोर के समान है। जो सन्त लोग यज्ञ के बाद बची हुई वस्तु-'यज्ञ- ेष' का उपभोग करते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो पापी लोग सिर्फ अपने लिए भोजन पकाते हैं वे तो मानो पाप ही का भोजन करते हैं।

आगे इस यज्ञमयी भावना का और अधिक विस्तार करते हुए वे कहते हैं- **अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।। कर्म ब्रह्माोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्। तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्। एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः। अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।। (गी.3-14 से 16)** यज्ञ का इतना माहात्म्य है कि हमारे भोजन का यह अन्न भी जब यज्ञ करता है, अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है तब इस अन्न से सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं (और यह अन्न कैसे पैदा होता है?) जब पर्जन्य मानो यज्ञ करता हुआ अपना सर्वस्व अर्पण

कर देता है, अपने को कुर्बान कर देता है तब इससे अन्न की उत्पत्ति होती है। यह पर्जन्य भी यज्ञ से पैदा होता है। जब नदी-नालों का तथा समुद्र का जल स्वयं को कुर्बान करता है तब जल के वाष्प बन जाते हैं तथा उन्हीं के यज्ञ-रूप कर्म से पर्जन्य का (बादल का) निर्माण होता है और फिर जल बरसता है। इस प्रकार यज्ञ से ही सब कुछ हो रहा है। कर्म ही उत्पत्ति 'ज्ञान' से होती है। 'ज्ञान' की उत्पत्ति 'अक्षर' अविना ाी परमात्मा से होती है। यह अक्षर सर्वव्यापी परमात्मा सदा यज्ञ में विद्यमान रहता है। हे पार्थ! संसार में इस प्रकार चलाए जा रहे यज्ञ के चक्र को जो आगे नहीं चलाता वह 'अघायु' है। अर्थात् उसका जीवन पापमय है, वह 'इंन्द्रियाराम' है, इन्द्रियों के सुखों में लम्पट हुआ-हुआ है, वह संसार में व्यर्थ ही जीता है। **दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते। ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति। श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति। ाब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।। सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते। द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञा च यतयः सं ातव्रताः। अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः। अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति। सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।। (गी.4-25से30)** कुछ योगी देवताओं को लक्ष्य में रखकर यज्ञ करते है, कोई दूसरे योगी ब्रह्माग्नि में यज्ञ द्वारा ही यज्ञ करते हैं। कई लोग कान, आँख, नाक आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के संयम रूप अग्नि-'संयमाग्नि' में होम करते हैं। कई लोग ाब्द, रूप, गन्ध आदि विषयों का इन्द्रियों की अग्नि- 'इन्द्रियाग्नि' में होम करते हैं। कई लोग इन्द्रियों के तथा प्राणों के सब कर्मों को ज्ञान से प्रदीप्त आत्म-संयम की 'आत्म-संयमाग्नि' में होम कर

देते हैं। इस प्रकार तीक्ष्ण व्रत का आचरण करने वाले कुछ यति अपनी भौतिक सम्पत्ति का होम करके 'द्रव्य-यज्ञ' करते हैं, कुछ यति तपस्या करके 'तपो-यज्ञ' करते हैं, कुछ यति योग विद्या का अभ्यास करके 'योग-यज्ञ' करते हैं, कुछ यति स्वाध्याय करके 'ज्ञान-यज्ञ' करते हैं। कुछ लोग जो प्राणायाम के अभ्यासी हैं वे प्राण तथा आपन की गति रोक कर प्राण का अपान में और अपान का प्राण में होम करते हैं और कुछ ऐसे लोग भी हैं जो आहार को नियमित करके प्राणों से प्राणों में आहुति देते हैं। हे अर्जुन! ये सब यज्ञविद् हैं, यज्ञ के रहस्य को जनने वाले हैं, और यज्ञमय जीवन द्वारा उनके पापों का ना ा हो जाता है। जिस-जिस भी व्यक्ति में इस प्रकार की यज्ञमयी भावना है उसी का लोक-परलोक सँवरता है क्योंकि यज्ञ भावना ही धर्म का व्यावहारिक स्वरूप है। जो ऐसा नहीं करते उनके लोक-परलोक बिगड़ जाते हैं- **यज्ञ ा ष्टाऽमतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्। नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम। एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे। कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे।। (गी. 4-31,32)** जो लोग यज्ञ से अव ि ष्ट अमतरूपी भोजन का सेवन करते हैं वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। हे अर्जुन! जो व्यक्ति यज्ञ नहीं करता उसके लिए यह लोक नहीं के बराबर है, दूसरा लोक तो उसे कहाँ प्राप्त हो सकता है? इस प्रकार अनेक प्रकार के यज्ञ वेद-वाणी में फैले हुए हैं-ऐसा जान। ऐसा जान लेने पर तू मुक्त होगा अर्थात् कर्म बन्धन से छूट जाएगा क्योंकि तुझे समझ आ जाएगा कि ये सब यज्ञ निष्काम-कर्म के ही प्रतीक हैं।

महादेव, सुन्दरनगर-174401
हि.प्र.

ि ाक्षा में अंग्रेजी माध्यम का दुष्प्रभाव

–महात्मा गाँधी

करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की ि ाक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मेकॉले ने ि ाक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनाई थी, ऐसा मैं सुझाना नहीं चाहता। लेकिन उसके काम का नतीजा यही निकला है। यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने दे ा में अगर मुझे इंसाफ पाना हो तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना पड़े। बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा बोल नहीं सकूँ। दूसरे आदमी को मेरे लिए तर्जुमा करना पड़े। यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है? इसमें मैं अंग्रेजी का दोष निकालूँ या अपना? हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जाननेवाले लोग हैं। प्रजा की हाय अंग्रेजी पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम लोगों पर पड़ेगी।
विदे ाी भाषा द्वारा ि ाक्षा पाने में जो बोझ दिमाग पर पड़ता है वह असह्य है। यह बोझ केवल हमारे बच्चे उठा रहे हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी ही पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठाने के लायक नहीं रह जाते। इससे हमारे ग्रेजुएट अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साही और कोरे नकलची बन जाते हैं। उनमें खोज की ाक्ति, विचार करने की ताकत, साहस, धीरज, बहादुरी, निडरता आदि गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं।

माँ के दूध के साथ जो संस्कार मिलते हैं और जो मीठे ाब्द सुनाई देते हैं, उनके और पाठ ााला के बीच मेल होना चाहिए। वह अंग्रेजी भाषा द्वारा ि ाक्षा देने से नही हो पाता। हम ऐसी ि ाक्षा के ि ाकार होकर मातद्रोह करते हैं। अंग्रेजी द्वारा मिलनेवाली ि ाक्षा की हानि यहीं नहीं रुकती। ि ाक्षित वर्ग और सामान्य जनता के बीच में भेद पड़ गया है। हम सामान्य जनता को नहीं पहचानते। सामान्य जनता हमें नहीं

जानती। हमें तो वह साहब समझ बैठती है और हमसे डरती है; वह हम पर भरोसा नहीं करती।

जब हम मातभाषा द्वारा िाक्षा पाने लगेंगे, तब हमारे घर के लोगों के साथ हमारा दूसरा संबंध रहेगा। आज हम अपनी स्त्रियों को अपनी सच्ची जीवन-सहचरी नहीं बना सकते। उन्हें हमारे कामों का बहुत कम पता होता है। हमारे माता-पिता को हमारी पढ़ाई का कुछ पता नहीं होता।

आजकल हमारी विधानसभाओं का सारा कामकाज अंग्रेजी में होता है। बहुतेरे क्षेत्रों में यही हाल हो रहा है। इससे विद्याधन कंजूस की दौलत की तरह गड़ा हुआ पड़ा रहता है। भारत में पहाड़ों की चोटियों पर से बरसात में पानी के जो प्रपात गिरते हैं उनसे हम अपने अविचार के कारण कोई लाभ नहीं उठाते। अंग्रेजी भाषा पढ़ने के बोझ से कुचले हुए हम लोग दूरदष्टि न रखने के कारण जनता को जो कुछ मिलना चाहिए वह नहीं दे सकते।

अंग्रेजी सीखने के लिए हमारा जो विचारहीन मोह है, उससे खुद मुक्त होकर और समाज को मुक्त करके हम भारतीय जनता की बड़ी-से-बड़ी सेवा कर सकते हैं। अंग्रेजी हमारी ाालाओं और विद्यालयों में िाक्षा का माध्यम हो गई है। वह हमारे दे ा की राष्ट्रभाषा हुई जा रही है। हमारे विचार उसी में प्रकट होते हैं।

पिछले 66 वर्षों से हमारी सारी ाक्ति ज्ञानोपार्जन के बजाय अपरिचित ाब्दों और उनके उच्चारण सीखने में खर्च हो रही है। हमने वास्तविक िाक्षा को भुला दिया है। इतिहास में इस बात की कोई दूसरी मिसाल नहीं मिलती। यह हमारे राष्ट्र की एक अत्यन्त दुःखद घटना है। हमारी पहली और बड़ी-से बड़ी समाज-सेवा यह होगी कि हम अपनी क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग ाुरू करें, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में उसका स्वाभाविक स्थान दें, प्रादे ाक कामकाज प्रादे ाक भाषााओं में करें और राष्ट्रीय कामकाज हिन्दी में करें। जब तक हमारे

स्कूल और कालेज प्रादेि ाक भाषाओं के माध्यम से ि ाक्षण देना ाुरू नहीं करते, तब तक हमें इस दि ाा में लगातार कोि ाि ा करनी चाहिए।

वह दिन ाीघ्र ही आना चाहिए जब हमारी विधानसभाएँ राष्ट्रीय सवालों की चर्चा प्रादेि ाक भाषाओं में या जरूरत के अनुसार हिन्दी में करें। अभी तक सामान्य जनता विधान-सभाओं में होने वाली इन चर्चाओं से बिल्कुल बेखबर ही रही है।

आज की अंग्रेजी ि ाक्षा ने ि ाक्षित भारतीयों को नकलची बना दिया है। दे ाी भाषाओं को अपनी जगह से हटाकर अंग्रेजी को बैठाने की प्रक्रिया अंग्रेजों के साथ हमारे संबंध ा का एक सबसे दुःखद प्रकरण है। राजा राममोहनराय ज्यादा बड़े सुधारक हुए होते और लोकमान्य तिलक ज्यादा बड़े विद्वान बने होते, अगर उन्हें अंग्रेजी में सोचने और अपने विचारों को दूसरों तक मुख्यतः अंग्रेजी में पहुँचाने की कठिनाई से आरंभ नहीं करना पड़ता। अपनी भाषा में व्यवहार करने से अपने लोगों पर उनका असर, और भी ज्यादा हुआ होता। इसमें कोई ाक नहीं कि अंग्रेजी साहित्य के समद्ध भंडार का ज्ञान प्राप्त करने से इन दोनों को लाभ हुआ। लेकिन इस भंडार तक उनकी पहुँच उनकी अपनी मातभाषाओं के जरिए होनी चाहिए थी। कोई भी दे ा नकलचियों की जाति पैदा करके राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकता।

इस ि ाक्षा-प्रणाली का जन्म ही एक बड़ी भ्रान्ति में से हुआ है। अंग्रेज ाासक यह मानते थे कि दे ाी-प्रणाली निकम्मी से भी ज्यादा बुरी है। और इस वर्तमान ि ाक्षाप्रणाली का पोषण पाप में हुआ, क्योंकि उसका उद्दे य भारतीयों का ारीर, मन और आत्मा को बौना बनाने का रहा है।

(नीचे का अं ा ि ाक्षा के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय भावना विकसित

करने के संबंध में रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा लिखे गए पत्र के उत्तर में गाँधीजी ने लिखा था।)

मुझे लगता है कि कवि-सम्राट् के समान ही मेरी भी स्वतंत्र और खुली हवा पर श्रद्धा है। मैं नहीं चाहता कि मेरा घर सब तरफ दीवारों से घिरा रहे और उसके दरवाजे और खिड़कियाँ बंद कर दी जाएँ। मैं भी यह चाहता हूँ कि मेरे घर के आस-पास दे ा-विदे ा की संस्कृति की हवा बहती रहे। पर मैं यह नहीं चाहता कि उस हवा के कारण जमीन पर से मेरे पैर उखड़ जाएँ और औंधे मुँह गिर पड़ूँ। मैं दूसरों के घरों में हस्तक्षेप करने वाले व्यक्ति, भिखारी या गुलाम की हैसियत से रहने के लिए तैयार नहीं। झूठे घमंड के व ा होकर या तथाकथित सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के लिए मैं अपने दे ा की बहनों पर अंग्रेजी का बोझ डालने से इन्कार करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि हमारे दे ा के जवान लड़के-लड़कियों को साहित्य में रस हो तो वे भले ही दुनिया की दूसरी भाषाओं की तरह ही अंग्रेजी भी जी भरकर पढ़ें। फिर मैं उनसे आ ाा रखूँगा कि वे अपने अंग्रेजी पढ़ने का लाभ खुद कवि-सम्राट् की तरह हिन्दुस्तान को और दुनिया को दें। लेकिन मुझे यह नहीं बर्दा त होगा कि हिन्दुस्तान का एक भी आदमी अपनी मातभाषा को भूल जाए, उसकी हँसी, उड़ाए, उससे ारमाए या उसे ऐसा लगे कि वह अपने अच्छे-से-अच्छे विचार अपनी भाषा में नहीं रख सकता। मैं संकुचित या बंद दरवाजे वाले धर्म में वि वास ही नहीं रखता। मेरे धर्म में ई वर की पैदा की हुई छोटी-से-छोटी चीज़ के लिए भी जगह है। मगर उसमें भाषा, जाति, धर्म, वर्ण या रंग के घमंड के लिए कोई स्थान नहीं है।

आज अगर लोग अंग्रेजी पढ़ते हैं, तो व्यापारिक बुद्धि से और तथाकथित राजनैतिक फायदे के लिए ही पढ़ते हैं। हमारे विद्यार्थी ऐसा मानने लगे हैं कि अंग्रेजी के बिना उन्हें सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। लड़कियों को तो इसीलिए अंग्रेजी

पढ़ाई जाती है कि उन्हें अच्छा वर मिल जाएगा। मैंने ऐसे कितने ही पति देखे हैं जिनकी स्त्रियाँ उनके साथ या उनके दोस्तों के साथ अंग्रेजी में न बोल सकें तो उन्हें दुःख होता है। मैं ऐसे भी कुछ कुटुंबों को जनता हूँ जिन्होंने अंग्रेजी भाषा को अपनी मातभाषा बना लिया है। सैकड़ों नौजवान ऐसा समझते हैं कि अंग्रेजी जाने बिना हिन्दुस्तान को स्वराज मिलना नामुमकिन था। इस बुराई ने समाज में इतना घर कर लिया है मानो ि ाक्षा का अर्थ अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के सिवा और कुछ है ही नहीं। मेरे ख्याल से तो ये सब हमारी गुलामी और गिरावट की साफ नि ाानियाँ है। आज जिस तरह दे ाी भाषाओं की उपेक्षा की जाती हैं और उनके विद्वानों व लेखकों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, वह मुझसे देखा नहीं जाता। माँ-बाप अपने बच्चों को और पति अपनी पत्नी को अपनी भाषा छोड़कर अंग्रेजी में पत्र लिखें तो वह मुझसे कैसे बर्दा त हो सकता है?

इस अंग्रेजी भाषा के माध्यम ने बच्चों के दिमाग को ि ाथिल कर दिया है, उनके स्नायुओं पर अनाव यक जोर डाला है, उन्हें रट्टू और नकलची बना दिया है तथा मौलिक कार्यों और विचारों के लिए सर्वथा अयोग्य बना दिया है। अंग्रेजी माध्यम ने हमारे बालकों को अपने ही घर में पूरा विदे ाी बना दिया है। यह वर्तमान ि ाक्षाप्रणाली का सबसे बड़ा करुण पहलू है। अंग्रेजी माध्यम ने हमारी दे ाी भाषाओं की प्रगति और विकास को रोक दिया है। **अगर मेरे हाथों में सत्ता हो, तो मैं आज से ही अंग्रेजी माध्यम के जरिए दी जानेवाली ि ाक्षा बंद कर दूँ और सारे ि ाक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त करा दूँ। मैं पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी का इंतजार नहीं करूँगा। वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे अपने-आप चली आएगी। यह एक ऐसी बुराई है जिसका तुरन्त इलाज होना चाहिए।** मैंने स्वामी श्रद्धानन्द

जी के गुरुकुल कांगड़ी में देखा था कि वहाँ विज्ञान आदि विषय भी आरंभ से हिन्दी माध्यम से पढ़ाए जाते थे।

हमें जो कुछ उच्च ि ाक्षा मिली है अथवा जो भी ि ाक्षा मिली थी वह केवल अंग्रेजी के ही द्वारा न मिली होती तो ऐसी स्वयंसिद्ध बात को दलीलें देकर सिद्ध करने की कोई जरूरत न होती कि किसी भी दे ा के बच्चों को अपनी राष्ट्रीयता टिकाए रखने के लिए नीची या ऊँची सारी ि ाक्षा उनकी मातभाषा के द्वारा ही मिलनी चाहिए। यह स्वयंसिद्ध बात है कि जब तक किसी दे ा के नौजवान ऐसी भाषा में ि ाक्षा पाकर उसे पचा न लें जिसे लोग समझ सके, तब तक वे अपने दे ा की जनता के साथ न तो जीता-जागता संबंध पैदा कर सकते हैं और न उसे कायम रख सकते हैं। आज इस दे ा के हजारों नौजवान एक ऐसी विदे ाी भाषा और उसके मुहावरों पर अधिकार पाने में कई साल नष्ट करने को मजबूर किए जाते हैं, जो उनके दैनिक जीवन के लिए बिल्कुल बेकार है और जिसे सीखने में उन्हें अपनी मातभाषा या उसके साहित्य की उपेक्षा करनी पड़ती है। इससे होने वाली राष्ट्र की अपार हानि का अंदाजा कौन लगा सकता है?

विदे ाी ाासन के अनेक दोषों में दे ा के नौजवानों पर डाला गया अंग्रेजी भाषा के माध्यम का घातक बोझ इतिहास में एक सबसे बड़ा दोष माना जाएगा। इस माध्यम ने राष्ट्र की ाक्ति हर ली है, विद्यार्थियों की आयु घटा दी है, उन्हें आम जनता से दूर कर दिया है और ि ाक्षण को बिना कारण खर्चीला बना दिया है। अगर यह प्रक्रिया अब भी जारी रही तो जान पड़ता है वह राष्ट्र की आत्मा को नष्ट कर देगी। इसलिए ि ाक्षित भारतीय जितनी जल्दी अंग्रेजी माध्यम के भयंकर व ाीकरण से बाहर निकल आएँ, उतना ही उनका और जनता का लाभ होगा।

साप्ताहिक 'हरिजन' से साभार

भगवद्गीता में आई त्रिपुटियों (तीन की गणना) का विवेचन

–डॉ. भवानीलाल भारतीय

भगवद्गीता में तीन संख्या वाले अनेक विषय वर्णित हैं। भारतीय संस्कृति और परम्परा में हमें ऐसी त्रिपुटियों का अस्तित्व एवं विवेचन मिलता है। यदि परमात्मा के सष्टिकर्ता, पालक और संहारकर्ता की चर्चा आई तो वहाँ तीन देवों – ब्रह्मा (सष्टि का रचयिता) विष्णु (सष्टि का पालनकर्ता तथा महे ा (अपरनाम रुद्र) को संहारक रूप में प्रस्तुत किया गया। यों वेद चार हैं किन्तु उनमें ऋग्वेद में छंदोबद्ध ऋचाएँ, यजुर्वेद में गद्य तथा सामवेद में गानपरक गीति इन तीन विधाओं के कारण वेदत्रयी का उल्लेख मिलता है। मानवी स्वभाव और उसकी प्रवत्ति के तीन भेद– सत्व, रजस् तथा तमस् के रूप में वर्णित हुए हैं और परमात्मा की प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म और उपासना की साधनत्रयी का विवेचन हुआ है।

भगवद्गीता के 17वें तथा 18वें अध्याय में ऐसी अनेक त्रिपुटियों का उल्लेख कर उनकी ग्राह्यता या हेयता को द ार्या गया है। सर्व प्रथम 17/2 में श्रद्धा के सात्विकी, राजसी तथा तामसी त्रिविध भेद बताये गये। सत्वगुण युक्त वि वास भाव को सात्विकी श्रद्धा कहा गया। सात्विक प्रकृति के पूरक सत्वगुण सम्पन्न देवों, मनुष्यों के प्रति श्रद्धा भाव रखते हैं जब कि यक्ष, राक्षस आदि अनिष्टकारियों के प्रति ऐसा भाव राजसी श्रद्धा कहलाता है। तामसी श्रद्धा वाले लोगों का बुद्धि फलक अत्यन्त निम्न होता है। वे सामान्य देवों की उपेक्षा तथा पि ाचों के प्रति पूज्य भाव रखते हैं। उनके ये पूज्य तथा श्रद्धेय वस्तुतः काल्पनिक ही हैं अतः उनके प्रति यह श्रद्धा भाव भी तामस संज्ञा का माना जायेगा। गीता के प्रवक्ता की सम्मति में आहार भी त्रिविध प्रकार है– सात्विक, राजस तथा

तामस। कहावत प्रसिद्ध है जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन। उपनिषद् में कहा गया है– **'आहार ुद्धौ सत्व ुद्धिः।'** आहार की ुद्धि से मन में ुद्धि रहती है और मन की ुद्धि से स्मति की ाक्ति में वद्धि होती है। गीताकार की राय में जो आहार सत्वगुण, आरोग्य, सुख तथा परस्पर प्रेम को बढ़ाने वाला होता है वह सत्वाहार है। कटु, खट्टा एवं लवण युक्त अत्यन्त गरम, रूखा तथा जलन पैदा करने वाला आहार राजस संज्ञक है। सारहीन, रस से रहित, दुर्गन्ध पैदा करने वाला, बासी, जूठा तथा अपवित्र भोजन तामस है।

इसी प्रकार यज्ञ को तीन रूपों का मानना उचित है। फल की आकांक्षा से रहित, ाास्त्रीय विधि से तथा एकाग्र मन से किया गया यज्ञ सात्विक है। फल की कामना से किया गया, मात्र दम्भ के प्रद ान के लिए किये गये यज्ञ राजस संज्ञा वाले हैं। जबकि विधि रहित, मंत्रहीन (जिसमें वेद मंत्रों का प्रयोग न हुआ हो) आस्था रहित तथा दक्षिणा रहित (जिस यज्ञ में याज्ञिकों को दक्षिणा न दी जाए) ऐसा यज्ञ तो तामस ही कहलायगा। जहाँ तक तप का प्र न है देवों, विद्वानों (कर्तव्योन्मुख ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वै य) प्रज्ञायुक्त पुरुषों की सेवा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य पालन तथा अहिंसा वत्ति धारण करना सात्विक तप है इसे ही ाारीर तप कहते हैं। सत्य वाक्य बोलना, ाास्त्रों का स्वाध्याय करना यह सब वाङ्मय तप के अन्तर्गत आते हैं। मन को सन्तुष्ट रखना, सौम्यता धारण करना, यथासमय मौन रहना, आत्मनिग्रह, भाव ुद्धि मानस तप कहलाते हैं। परा कोटि की श्रद्धा, त्रिविध तपों का आचरण, फलाकांक्षा रहित होना सात्विक तप है। इसके विपरीत सत्कार तथा सम्मान पाने के लिए दम्भ युक्त तप राजस है। मूढ़ता युक्त, स्वयं को व्यर्थ पीड़ा

पहुँचाना तथा दूसरों से बदला लेने के भाव से किया गया तप निकृष्टकोटि का तामस तप है। काम, क्रोध तथा लोभ की तिकड़ी को आत्मविना ाक माना गया है–गीता (16/21) में ये नरक के द्वार कहे गये हैं।

गीता के पंद्रहवें अध्याय में दान के भी तीन भेद कहे गये हैं। दान देने को कर्तव्य मानकर, बदले में फल की आकांक्षा न रखते हुए तथा दे ा, काल और पात्र के औचित्य को परखकर जो दान दिया जाता है वह सात्विक दान है जबकि प्रत्युपकार के लक्ष्य को रखकर तथा फल की कामना से किया जाने वाला दान राजस दान है। दे ा और काल का ध्यान न रखकर सत्कार रहित, अपमानपूर्वक कुछ देना तामस दान है। अठारहवें अध्याय में पुनः कुछ त्रिपुटियों का उल्लेख आया है। कर्म फल की इच्छा न रखते हुए, असक्ति रहित कर्त्तव्य बुद्धि में किया गया त्याग सात्विक है जबकि काया के क्ले ा के भय तथा उसे दुःखदायक समझकर किया गया त्याग राजस त्याग है। नियत कर्म को त्यागना तथा मोहव ा उसे छोड़ देना तामस त्याग है। इसी अध्याय में कर्म में त्रिविध कारण बताये गये हैं– प्रथम ज्ञान, दूसरा ज्ञेय (जानने योग्य) तथा तीसरा ज्ञाता–जानने वाला–ये तीन ही कर्म के मुख्य प्रेरक होते हैं।

- जिस प्रकार बिना जल के धान नहीं उगता उसी प्रकार बिना विनय के प्राप्त की गई विद्या फलदायी नहीं होती।
- भोग में रोग का, उच्च–कुल में पतन का, धन में राजा का, मान में अपमान का, बल में ात्रु का, रूप में बुढ़ापे का और ाास्त्र में विवाद का डर है। भय रहित तो केवल वैराग्य ही है।
- आलसी सुखी नहीं हो सकता, निद्रालु ज्ञानी नहीं हो सकता, ममत्व रखनेवाला वैराग्यवान नहीं हो सकता और हिंसक दयालु नहीं हो सकता।

–भगवान महावीर

दयानन्द, राष्ट्रीय एकता और हिन्दी

–श्री विष्णु प्रभाकर

जागति के प्रभात में भारत ने अपने सुनहरे अतीत को देखा और देखा कुचले हुए वर्तमान को। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और रामकृष्ण परमहंस आदि दिव्य पुरुष इस जागति के जन्मदाता बनकर आए। स्वामी दयानन्द इन्हीं तत्ववेत्ताओं में से थे, जिन्होंने भारत की बौद्धिक और सामाजिक एकता के लिए अमर प्रयत्न किए। उनके सारे प्रयत्नों का मूलभूत आधार वेद थे। एकता की स्फूर्ति ही मानों उन्होंने वेदों से पाई थी। उनके जीवन की सारी सफलताओं का कारण भी वेद ही रहे। वेद में एक मंत्र आता है– **'इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः।'** मातभाषा, मात–संस्कृति और मातभूमि तीन कल्याण के स्रोत हैं इनको अपने हृदय मन्दिर में धारण करो। बस, इस आदे ा की पूर्ति में जीवन के अंत तक लगे रहे।

इसी महात्मा की अन्तरात्मा में मानों स्वयं वि वात्मा ने ि ावरात्रि के दिन यह अमर प्रेरणा की थी। यह बोध की रात्रि सचमुच भारत के पुनर्जन्म की रात्रि थी।

के ाव बाबू की प्रेरणा

अपने जीवन के लगभग 35 वर्ष स्वामी दयानन्द ने ज्ञान की खोज में इधर–उधर भटककर बिता दिए थे। सन् 1865 में जब स्वामी विरजानन्द जी से उन्होंने विदा ली, तब वे लगभग 41 वर्ष के थे। उसके सात वर्ष बाद सन् 1872 में मानों राष्ट्र–माता की प्रेरणा से ही दयानन्द ने बंगभूमि में प्रवे ा किया। यही समय उनकी अनेक बोध तिथियों में से एक है। हिन्दी–साहित्य के इतिहास में यह एक अमर घटना है। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और भक्तिभाजन के ावचन्द्र सेन की मित्रतापूर्ण प्रेरणा का फल था कि दयानन्द ने हिन्दी को अपनाया। उस समय उनकी आयु 47 वर्ष की थी। वे संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। वे जन्म से गुजराती ब्राह्मण थे। एक बंगाली की आग्रहपूर्ण प्रेरणा से उन्होंने हिन्दी सीखी। के ाव बाबू ने स्वयं हिन्दी क्यों नहीं सीखी? इस प्र न का उत्तर इतिहास में नहीं मिलता। यह कल्पना का विषय है, परन्तु नि चय ही भक्तिभाजन के ाव बाबू ने स्वामी दयानन्द में एक ज्योति देखी थी। वह मानों ांकित हो उठे थे, कहीं यह ज्योति उनके अपने काम के समान कुछ ही दायरे को

रो ान करके बुझ न जाए। तभी उन्होंने दयानन्द को हिन्दी जानने का पराम ा दिया।

स्वदे ा की भाषा

मथुरा से जाने के बाद और बंगाल में आने से पहले जो सात साल दयानन्द ने इधर-उधर प्रचार में बिताए, उनमें उन्होंने समझ लिया था कि यद्यपि संस्कृत देववाणी है, परन्तु वह सर्वसाधारण की भाषा नहीं है। अंग्रेजी तब नई थी और फिर विदे ाी। भाषा संस्कृति और सभ्यता का को ा है। किसी भी सभ्यता के अपने गुण होते हैं और भाषा उन गुणों की वाहक होती है। भाषा के बदल जाने पर सभ्यता और संस्कृति में उथल-पुथल मच जाने की पूरी संभावना होती है। तब विदे ाी भाषा सीखने का मतलब अपनी संस्कृति का त्याग होता। जिस भाषा की रूपरेखा, भाव-व्यंजना, बिल्कुल ही हमारी संस्कृति से मेल नहीं खाती, वह क्यों कर आर्य-सभ्यता के पुनरुद्धारक को स्वीकार हो सकती थी?

स्वामी दयानन्द को भी दूसरी भाषाओं से द्वेष नहीं था 'सत्यार्थप्रका ा' के द्वितीय समुल्लास में उन्होंने लिखा है, 'जब पाँच-पाँच वर्ष के लड़का-लड़की हों, तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास कराएँ, अन्य दे ाीय भाषाओं के अक्षरों का भी।'

एकता का सूत्र

तब स्पष्ट है, हिन्दी को अपनाते समय दयानन्द का यही विचार रहा होगा कि लाखों-करोड़ों लोगों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए जनसाधारण की भाषा का प्रयोग ठीक है। फिर वह समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे। इसी भावना को लेकर मानसिक उन्नति का जो कार्य उन्होंने उठाया, वह लोक-प्रचलित भाषा के माध्यम द्वारा ही हो सकता था। वह सारे दे ा को एक राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। एक भाषा, एक धर्म और एक संस्कृति का प्रचार इसी मत की पुष्टि करता है।

वे व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वार्थ से सर्वथा मुक्त थे, उनकी अन्तरराष्ट्रीयता वेद का सहारा लेकर खड़ी होती थी और इसी कारण वह कभी-कभी संकुचित जान पड़ता है और अचरज होने लगता है। तब वह उग्र राष्ट्रवादी-से मालूम पड़ते हैं। वेद को अलग करते ही दयानन्द ून्य हैं।

यह भी जानना होगा, स्वामी जी हिन्दी को लेकर हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा बनाने नहीं चले थे, परन्तु राष्ट्रभाषा की जरूरत

अनुभव करते करते हिन्दी तक आ पहुँचे थे। उन्हें तो केवल यही ध्यान था कि किसी भी जाति को सफलता के साथ िाक्षा देने का उपाय यही है कि उसे अपनी भाषा में ही िाक्षा दी जाए। स्वामी दयानन्द द्वारा हिन्दी के अपनाए जाने का एक और भी कारण हो सकता है। हिन्दी की लिपि देवनागरी थी। यही संस्कृत भाषा की भी लिपि है। वे संस्कृत के अनन्य प्रेमी थे। इसी से हिन्दी के प्रति भी उन्हें प्रेम रहा होगा। उन्होंने स्वयं लिखा है: 'दयानन्द के नेत्र वह दिन देखना चाहते हैं, जब क मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य संपादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रंथ आर्यभाषा में लिखे और प्रकाि ात किए हैं।'

सत्यार्थप्रका ा

जिस दिन से उन्होंने हिन्दी के महत्व को समझा, उसी दिन से वह उसका प्रयोग करने लगे। के ाव बाबू की उस ऐतिहासिक प्रेरणा के लगभग दो वर्ष बाद स्वामी दयानन्द का अद्‌भुत ग्रंथ 'सत्यार्थप्रका ा' प्रकाि ात हुआ। तब वह पचास वर्ष के थे। उस ग्रंथ की भाषा पर संस्कृत और गुजराती का प्रभाव स्पष्ट है, तो भी अचरज होता है, इतने थोड़े अरसे में कैसे वह हिन्दी भाषा पर इतना अधिकार प्राप्त कर सके। ऐसा मालूम होता है, 'सत्यार्थप्रका ा' के प्रथम संस्करण की भाषा बहुत ाुद्ध नहीं थी। बाद के संस्करण की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि संस्कृत बोलने तथा जन्म की भाषा गुजराती होने के कारण पहले मुझे इस भाषा का ठीक-ठीक परिज्ञान न था, इससे भाषा अ ाुद्ध बन गई थी।

'सत्यार्थप्रका ा' के अतिरिक्त 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' आदि अनेक पुस्तकें उन्होंने हिन्दी में ही लिखी हैं। हिन्दी में वेदों की टीका एक अपूर्व देन हैं। सम्भवतः वेदों को विद्वानों की पंचायत से निकाल कर सर्वसाधारण की चीज बनाने का श्रेय स्वामी दयानन्द को ही है। किसी भी मत की धर्म-पुस्तकें जिस भाषा में होती हैं, वह भाषा अनन्त गौरवमयी है। गुजराती होकर भी स्वामी दयानन्द ने यह अनन्त गौरव हिन्दी को दिया। यहीं तक नहीं, उन्होंने अपने स्थापित किए हुए आर्यसमाज का यह नियम बना दिया, 'प्रत्येक आर्य तथा आर्य सभासद को आर्यभाषा और संस्कृत जाननी चाहिए।' व्यापक रूप में हिन्दी का प्रचार

करने वालों में स्वामी दयानन्द का स्थान सबसे पहला है, तो अत्युक्ति न होगी।

आर्यभाषा

पर यह आर्यभाषा क्यों? स्वामी दयानन्द का विचार था कि हम विदे ा के सहारे न जिएँ। वैदिक युग में हम अपने को 'आर्य' कहते थे। हमारे दे ा का नाम 'आर्यावर्त' था, तब भाषा भी 'आर्यभाषा' क्यों न हो? वे हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान को विदे ायों के दिए नाम कहते थे। अपने स्थापित समाज का नाम भी उन्होंने 'आर्यसमाज' रखा।

उनकी बात ठीक थी, अंग्रेज हमें इंडियन कहते हैं। हम भी अपने को ऐसे ही कहने लगें, तो हँसी के ही पात्र होंगे। 'हिन्दी ाब्द के साथ बहुत काल से जो भावनाएँ सम्बन्ध रखती चली आई हैं, उनका विचार करके आर्यसमाज ने इस हिन्दी नाम को स्वीकार कर लिया है। उग्र राष्ट्रवादी आर्यसमाज से दे ोन्नति के किसी काम में बाधा डालने की आ ाा नहीं की जा सकती।

स्वामी दयानन्द मात्र हिन्दी प्रचार के लिए नहीं थे। उनका जो महान् उद्दे य था, उसकी पूर्ति में यह सहायक थी, ाायद अनिवार्य थी। तभी उन्होंने इसे अपनाया। इसी प्रकार वह साहित्यिक भी नहीं थे, पर जब उन्हें हिन्दी में लिखना पड़ा, तो उनका लिखा हुआ भी साहित्य में गिना जाने लगो।

हिन्दी पर उर्दू का प्रभाव

स्वामी जी के कारण का ाी के अनेक संस्कृतज्ञ पंडितों ने 'भाषा' को अपनाया। इससे हिन्दी की लोकप्रियता तो बढ़ी, पर उसमें दुरूहता आ गई। धारा अटक-अटक कर बहने लगी। सम्भव था, कुछ आगे बढ़कर वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व खो बैठती, पर उसके चाहने वालों में कुछ नए रंग के आ ाक भी थे। स्वामी जी को अपने विचारों के प्रचार में पंजाब में बड़ी सफलता मिली। पंजाब उर्दू का गढ़ था। स्वामी जी की पैरोकार जनता को हिन्दी सीखने से पहले उनके ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद हुआ। देववाणी और आर्यभाषा को अरबी लिबास पहनना ही पड़ा। बहुत समय तक उर्दू लिपि में संस्कृत छपती रही। यह मिलन हिन्दी के लिए सौभाग्य सूचक ही था। आज के हिन्दी-हिन्दुस्तानी के युग में जिस भाषा की पूछ है, वह बिना चाहे ही पंजाब में अनेक वर्षों से बन रही थी। आर्यसमाज के कारण जिन बुजुर्गों ने नागरी लिपि सीखी, वे

लिखते समय उर्दू का प्रभाव दूर नहीं कर सके। परिणाम यह हुआ, संस्कृतज्ञों के कारण जो धारा अटक-अटक बहने लगी थी, वह खुलकर उमड़ चली। देववाणी संस्कृत की कुलीन संतान अरबी की मस्ताना आनबान से अछूती न रह सकी। आज जो पंजाब में हिन्दी का इतना नाम है, वह सब स्वामी दयानन्द की प्रेरणा का ही फल है।

आर्य समाज और हिन्दी

आर्य समाज ने हिन्दी के लिए क्या किया? गुरुकुलों के विषय में दो ाब्द लिख देना उचित ही होगा। ि ाक्षा का माध्यम दे ाी भाषा होनी चाहिए, क्रियात्मक रूप में इस पर सबसे पहले गुरुकुल में ही परीक्षण हुए। हिन्दी में अभी तक भी अनेक विषयों की पुस्तकें नहीं थीं, अनेक पारिभाषिक ाब्दों का तो अभाव ही था। इस ओर कदम बढ़ाने वाले गुरुकुल के स्नातक ही थे। ऐतिहासिक, दा िनिक और वैज्ञानिक विषयों पर उन्होंने अनेक मौलिक ग्रंथ लिखे। उन्होंने बड़े-बड़े वि ववविद्यालयों के संस्थापकों के दिल से इस बात को दूर कर दिया कि हिन्दी भाषा में उच्च विज्ञानों की ि ाक्षा नहीं दी जा सकती। स्वामी श्रद्धानन्द ने सबसे पहले अपने 'गुरुकुल' में विज्ञान, रसायन ाास्त्र, अर्थ ाास्त्र, कृषिविज्ञान और भौतिक विज्ञान की ि ाक्षा हिन्दी के माध्यम से देने की को ि ा ा की। कलकत्ता वि ववविद्यालय कमी ान के प्रधान मि. सैडलर ने तो लिखा था, 'मातभाषा द्वारा ऊँची ि ाक्षा देने के परीक्षण में गुरुकुल को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई हैं।' हिन्दी तब इतनी लोकप्रिय हुई कि श्री मिलबर्न सरीखे पादरी केवल हिन्दी सीखने के लिए गुरुकुल आए। और भी गुरुकुल के प्रेम से खिंचे हुए अनेक विदे ाी लोगों ने हिन्दी पढ़ी।

राष्ट्रीय महासभा (काँग्रेस) के 35 साल के जीवन में वह पहला अवसर था, जबकि अमतसर की ऐतिहासिक काँग्रेस के स्वागताध्यक्ष के पद से श्रद्धानन्द संन्यासी ने अपना भाषण हिन्दी में लिखा और पढ़ा। वह समय 1919 का था और स्व. पं. मोतीलाल नेहरु उस साल सभापति थे।

हिन्दी के प्रत्येक क्षेत्र में आज आर्यसमाज के सेवक तन, मन, धन से काम कर रहे हैं। यह सब उसी महात्मा की अनोखी सूझ का फल है, जो स्वार्थ की भावना से अछूती थी, जिसका एकमात्र उद्दे य राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधना था।

पूरी दुनिया हिन्दी की तरफ देख रही है

–अनीता वर्मा

भाषा वैचारिक आदान–प्रदान का वह माध्यम है, जिससे दूर–दराज बैठे उस व्यक्ति के पास भी पहुँचा जा सकता है, जो हमें जानता तक नहीं है। भाषा से अभिप्राय मात्र अपनी बात कहना ही नहीं है, बल्कि दे ा, समाज व वि व से जुडना भी है। इस जुड़ने के लिए जरूरी है कि भाषा बाजार का भी हिस्सा बने। वै वीकरण के इस दौर में यह आव यक भी है। निःसंदेह यह सदियों से चला आ रहा एक नियम भी है कि अगर आप किसी दौर में कुछ करना चाहते हैं, तो उस दौर के साथ चलें। आज बाजारवाद का दौर है। ऐसे में भाषा को भी बाजार से जुड़ना होगा।

पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी ने बहुत तेजी से इस दौर में स्वयं को स्थापित किया है। खड़ी बोली 1000 ईसवी में ौरसेनी अपभ्रं ा से उद्भूत होकर आज वि व की प्रमुख भाषाओं में गिनी जाने लगी है। इस दौरान हिन्दी ने अन्य भाषाओं के ाब्द भी ग्रहण किए। इससे यह अधिक विकसित और समृद्ध होती गई।

वि व में स्थान

अगर हम वि व में हिन्दी का प्रयोग करने वाले लोगों की संख्या के आधार पर इसके स्थान के बारे में चर्चा करें, तो वर्ष 1951 में हिन्दी वि व में पाँचवें स्थान पर थी। 1980 के आसपास वह चाइनीज और अंग्रेजी के बाद तीसरे स्थान पर आ गई। वर्तमान स्थिति के बारे में विभिन्न वि ोषज्ञों ने सिद्ध किया है कि वि व में हिन्दी का प्रयोग करने वालो की संख्या चाइनीज का प्रयोग करने वालों से भी अधिक हो गई है। हालांकि इस तथ्य पर अभी सर्वसम्मति न होने से इसे मान्यता नहीं मिली है और इस संबंध में ोध कार्य जारी है।

हिन्दी बनी मजबूरी

सबसे पहले बाजार की बात करें। वै वीकरण के इस दौर में

भारतीय मध्यम वर्ग की क्रय ाक्ति बढ़ी है और वह स ाक्त रूप से इस बाजार का हिस्सा बना है। वि वभर की कंपनियों की नजर इस वर्ग पर है। वे यह भी जानती हैं कि इन्हें आकर्षित करने के लिए इनकी ही भाषा यानी हिन्दी को अपनाना होगा। एस.एम.एस. की भाषा से लेकर इंटरनेट व ब्लॉग सभी में हिन्दी को न केवल इस्तेमाल करना ुरू किया गया, बल्कि यह भी पाया गया कि यह एक वैज्ञानिक भाषा है और इसे कंप्यूटर पर तकनीक के माध्यम से आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। हिन्दी की वि ोषता यह भी है कि 'हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही लिखते हैं।' यह इसी भाषा में संभव है। उदारीकरण के इस दौर में हिन्दी को खतरा तब महसूस हुआ, जब कई बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में आईं। यहाँ तक कि विदे ी टीवी चैनलों ने भी भारत में दस्तक दी, तो हिन्दी चैनल लाना उनकी मजबूरी थी। आज टी.वी. चैनलों में 75 प्रति ात से ज्यादा बाजार हिन्दी के हाथ में हैं।

फिल्मों से बढ़ावा

हिन्दी के गीत-संगीत और बॉलिवुड की फिल्मों की धूम पूरी दुनिया में है। वि व में हिन्दी फिल्मों का बहुत बड़ा बाजार है। आज दुनियाभर के लोग हिन्दी फिल्मों के नायक-नायिकाओं को जानते और खासा पसंद करते हैं। ये स्टार्स हिन्दी फिल्मों के माध्यम से पूरी दुनिया के लोगों तक पहुँच रहे हैं या कहें कि हिन्दी इनके माध्यम से भी वि व में लोकप्रिय हो रही है। उधर, हॉलिवुड की हिन्दी में डब फिल्में भी यहाँ अच्छा-खासा बिजनेस करती हैं।

रेडियो की हिन्दी सेवा

वि व में हिन्दी की बढ़ती लोकप्रियता का एक प्रमाण यह भी है कि वि व में अनेक दे ों की रेडियो सेवाओं में हिन्दी भाषा में अनेक कार्यक्रम व समाचार प्रस्तुत किए जाते हैं।

इसके लिए बाकायदा हिन्दी सेवा ुरू की गई है। इसका मुख्य कारण यह भी माना जाता है कि वि व में 30–40 करोड़ से ज्यादा लोग जिन भाषाओं को बोलते हैं, हिन्दी भी उनमें से एक है।

हिन्दी पुस्तकें

हिन्दी पुस्तकें पढ़ने वालों की संख्या पूरी दुनिया में बढ़ी है। साथ ही हिन्दी पुस्तकों का अनुवाद भी अन्य भाषाओं में तेजी से हो रहा है। अंग्रेजी व अन्य भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद कराने वाले प्रका ाकों को भी अच्छी–खासी संख्या है। भारत का में सबसे अधिक पत्र–पत्रिकाएँ भी हिन्दी में ही छप रही हैं। ज्ञान–विज्ञान की पुस्तकें भी हिन्दी में छपी व पढ़ी जा रही हैं।

एन आर आई

भारतीय मूल के लगभग डेढ़ करोड़ लोग वि व के 132 दे ाों में फैले हुए हैं। विदे ाों में बसे भारतीय संबंधित दे ाों में भारत का ही नहीं, हिन्दी का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। इन दे ाों में वे हिन्दी से जुड़े कार्यक्रम भी आयोजित करते हैं और कई पत्र–पत्रिकाएँ भी प्रका ात करते हैं। इससे भी हिन्दी के प्रसार को बढ़ावा मिलता है।

इंटरनेट

हिन्दी को अपनाने वाला नवीनतम बाजार है, इंटरनेट। सूचनाओं के इस मकड़जाल पर आज न सिर्फ तमाम जानकारियाँ हिन्दी में उपलब्ध हैं, बल्कि यूनिकोड जैसी हिन्दी में लिखने की सुविधा भी मौजूद है। इतना ही नहीं, इंटरनेट पर आज हिन्दी में लिखी सामग्री को आसानी से अपलोड व डाउनलोड भी किया जा सकता है।

अंत में एक बात और, आज पूरा वि व हिन्दी को चौकन्नी नजर से देख रहा है। 'विदाउट रिजर्व' मैगजीन के संदर्भ से बिल गेट्स के बेटे की मानें तो अंग्रेजी को थोड़ा चौकन्ना रहने की जरूरत है, क्योंकि वि व की तीन भाषाएँ अंग्रेजी को कड़ी टक्कर दे रही हैं। ये है– चाइनीज, हिन्दी और स्पैनि ा।

हिन्दुस्तान में हिन्दी की दुर्द ाा

भारत में हिन्दी सीखना बहुत मु किल – बोयानोवा

करीब दो द ाक से हिन्दी से जुड़ी और अनेक हिन्दी ग्रन्थों का बल्गारियाई भाषा में अनुवाद कर चुकी बल्गारिया की हिन्दी लेखिका सुश्री योरांदा बोयानोबा का मानना है कि भारत में हिन्दी सीखना बहुत मु किल है क्योंकि यहाँ लोग अंग्रेजी बोलने में ाान समझते हैं। हाल ही में पुणे के चिंचवाड ाहर में महाराष्ट्र राज्य हिन्दी अकादमी और पुणे ि ाक्षण संस्थान की ओर से आयोजित अन्तराष्ट्रीय हिन्दी साहित्य संगम में भाग लेने आई बोयानोवा ने हिन्दी के प्रति यहाँ के लोगों के नजरिए पर खिन्नता जताई।

विदे ाी मूल की हिन्दी लेखिका ने कहा कि भारत में ाुद्ध हिन्दी सुनने को ही नहीं मिलती। यहाँ की भाषा खिचड़ी हो चुकी है। हिन्दी के अच्छे जानकार भी बातचीत के दौरान आधे से ज्यादा अंग्रेजी ाब्दों का प्रयोग करते हैं। सुश्री बोयानोवा ने कहा कि और भी कई गैर–भारतीय हिन्दी प्रेमी मिलते हैं जो यही ि ाकायत करते हैं। दरअसल भारत में वे हिन्दी सीखने या सुधारने आते हैं लेकिन यहाँ उनकी हिन्दी और खराब हो जाती है।

मीराबाई के पदों और श्रीमद् भागवत का बल्गारियाई भाषा में अनुवाद कर चुकी और कई ग्रन्थों के अनुवाद पर काम कर रही बल्गारियाई लेखिका ने कहा कि हिन्दी भारत की आत्मा है। अगर आप भारत के बारे में जानना चाहते है तो हिन्दी सीखने के अलावा और कोई चारा नहीं है।

प्रेमचन्द्र, जय ांकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', डॉ. धर्मवीर भारती, आचार्य चतुरसेन, हिमां ाु जो ाी समेत सभी हिन्दी साहित्यकारों की पुस्तकें पढ़ चुकी सुश्री बोयानोवा भारतीय लेखकों से खासी प्रभावित हैं। उन्होंने बताया कि मौजूदा काम निपटाने के बाद वह भविष्य में मध्यकाल के साहित्य का अनुवाद करने के अलावा वरिष्ठ कवि हरिवं ाराय 'बच्चन' की 'मधु ााला' का बुल्गारियाई भाषा में अनुवाद करेंगी। उन्होंने बताया कि बुल्गारिया में हिन्दी काफी फलफूल रही है और छात्रों का आकर्षण विदे ाी भाषाओं में हिन्दी की ओर सबसे ज्यादा है।

सुश्री बोयानोवा ने बताया कि बल्गारिया में उन्होंने दो हिन्दी अकादमियों की स्थापना की है जहाँ पुस्तकालयों में हिन्दी की करीब-करीब हर अच्छी पुस्तक उपलब्ध कराई गई है। हिन्दी अध्ययन के लिए भारत के विभिन्न ाहरों का दौरा कर चुकी सुश्री बोयानोवा को राधाकृष्ण की रासलीला स्थली ब्रजभूमि सबसे ज्यादा पसन्द है।

जनसत्ता

सर्वोच्च न्यायलय में हिन्दी में लिखी याचिका नामंजूर

सर्वोच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल ने हिन्दी में लिखी याचिका को नामंजूर कर दिया। याचिका में राजभाषा हिन्दी एवं अन्य प्रादेि ाक भाषाओं में वकालत करने व इनके ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल करने पर जोर दिया गया था। याचिका की स्वीकारोक्ति पर निर्णय के लिए रजिस्ट्रार जनरल द्वारा बुलाई गई आपात बैठक में इस आ ाय का निर्णय लिया गया। राजभाषा संघर्ष समिति महासचिव प्रभुलाल चौधरी ने बताया कि रजिस्ट्रार जनरल ने याचिकाकर्ता को कहा कि वे याचिका का अंग्रेजी अनुवाद भी साथ में दाखिल करें, तभी उसे स्वीकार किया जाएगा। संविधान के अनुच्छेद 29 व 30 में वर्णित सांस्कृतिक व ौक्षणिक अधिकारों के साथ-साथ राजभाषा संबंधित प्रका ान में स्पष्ट है कि याचिका की मूलभाष (राजभोषा-हिन्दी) में ही सुनवाई की जाना चाहिए। दे ा के सभी राज्यों में हिन्दी के साथ-साथ प्रादेि ाकभाषाओं के तहत ही कार्य होना चाहिए। प्रादेि ाक भाषाओं को हिन्दी की तरह हर क्षेत्र में विकसित करना आव यक है, ताकि आम लोगों की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी सुनि िचत हो सके।

याचिका के अनुसार अदालतों में अंग्रेजी के स्थान पर प्रादेि ाक भाषाओं का पूरा इस्तेमाल करना चाहिए। याचिका में संविधान और अन्य कानूनों के हिन्दी व प्रादेि ाक भाषाओं में अनुवाद किए जाने की भी वकालत की गई। उच्च ि ाक्षा में हिन्दी के साथ-साथ प्रादेि ाक भाषाओं के अधिकाधिक प्रयोग पर भी याचिका में जोर दिया गया है। याचिका में अंग्रेजी के प्रभाव को समाप्त करने के लिए केन्द्र के साथ-साथ प्रादेि ाक स्तरों पर आयोग बनाने का सुझाव भी उचित रहेगा।

Science Behind Pranayama

-Anil Rajvanshi

Pranayama means control over Prana or vital force. According to Patanjali, it is controlled breathing which includes deep inhaling, exhaling and retention of breath. Pranayama occupies a central position in the Indic yogic system; it is said that liberation of soul is achieved through proper Pranayama and meditation. Medical science has shown that Pranayama helps in toning the mind and body.

What you Inhale

In 1941, researchers discovered that nanoparticles, when inhaled, could be lodged in the brain by breaching the blood-brain barrier or BBB. This field of research remained dormant till the 1990s when scientists, alarmed by rising environmental pollution, went back to earlier research and confirmed that toxin invasion of brain through breathing was a possibility.

A small part of the air we breathe through our nostrils goes directly to the brain via the olfactory lobe and a portion goes to the lungs that supply necessary oxygen to blood. Thus, what we inhale effects mind and body directly. The air we breathe has direct impact on our brain. Scientists have also found that breathing through one nostril affects the part of the brain on that side, and thus the practice of inhaling through one nostril during Pranayama is to stimulate that side of the brain and not for cleaning the nostril. Similarly, deep, slow breathing allows enough time for nanoparticles and Prana to pass through the BBB and into the brain.

This has alarming implications since the pollution that we inhale from house hold and automobile smoke, dust and general industrial environment could enter the brain directly and affect the nervous system. Increased incidence of cancer, dementia and Alzheimer's disease have been attributed partly

to toxin invasion of the brain caused by pollution. This could also be a possible reason why passive smoking is far more dangerous than smoking itself since the exhaled smoke particles go to the brain directly. Scientists say that though pollutants are most of the time flushed out of the lungs by the immune system, toxic particles in the brain go on accumulating.

If Pranayama is practised in a clean, open-air environment daily, then it can help negate problems of modern life. Antibiotics-resistant bacteria get neutralised with fresh air and plenty of sunlight. Enclosed environment of hospitals and officers with airconditioning and artificial air breeds bacteria which cause diseases in people residing in these buildings.

Exposing them to plenty of sunlight and fresh air has brought down incidence of diseases dramatically. A possible mechanism for this is that UV radiation of sunlight interacts with nanoparticles in air and produces free radicals and these reactive free radicals when inhaled, have tremendous therapeutic value. Toxins in the brain can be detoxified by inhaling free radicals. A good, deep sleep helps in flushing out toxins from the brain.

In the mountains, the proportion of UV rays in sunlight is higher than in the plains and with higher altitude and less pollution, creation of free radicals also increases. Mountain retreats have always been recommended for improving health. Probably that could also be a reason why yogis went to mountains for meditation and practising Yoga.

One of the most important part of breathing is smell. It is a strong memory-evoking sense. Smell signals from the nose go directly to the limbic system, the seat of emotions. Thus, smells evoke deep emotional responses.

Studies have shown that fragrance and odours can change moods and influence judgement. Perhaps that's why we've al-

ways had a love affair with flowers and their fragrance. The perfume industry is $ 30-35-billion strong today. Use of mood-enhancing incense has been used in religious practices since long. Clean, crisp mountain air with fragrance of flowers literally evokes the abode of gods since Pranayama in such an environment provides the mechanism for detoxifying and cleansing the brain for better meditation and hence liberation.

Scientists are also using Paranayama pathway for developing brain drug delivery systems through nasal sprays so that it can breach the BBB and go directly to the brain. I believe that is how homeopathic medicines also work.

Homoepathic medicines are given in the form of small globules which a patient is supposed to suck. Through sucking of pills, a small part of the medicine reaches the brain via the olfactory lobe. This helps the brains to trigger the mechanism by which the body releases chemicals to fight the disease. That is why the best way to administer homeopathic medicines is to spray the liquid directly on the tongue. This allows rapid transfer of the particle mist to the brain via the olfactory lobe.

Also, homoepathic medicines are supposed to be taken half an hour before or after food consumption so that the smells of food do not interfere with the aroma of the medicine. Another interesting aspect of homeopathic medicines is that their potency increases with increasing dilution. There are conflicting reports on why this happens. I feel that increased dilution of medicine allows the BBB to be breached with relative ease resulting in its enhanced effect on the brain. Thus, Pranayama acts like enhanced homoepathy where free radicals from clean air help detoxify the brain and body for healthy living.

IMPORTANCE OF SANSKRIT

Ex-President A P J Abdul Kalam one Thursday termed Guru Raghavendraswamy of Mantralayam as a 'divine soul' and recalled the rich cultural heritage of Sanskrit in Indian history.

Dr Kalam interacted with the students of Sree Guru Sarvabhouma Sanskrit Vidyapeetham at Mantralayam in Kurnool district. Reciting the Moola Mantram of Raghavendraswamigal, he said "We worship Guru Raghavendraswamy, the divine soul who practiced and taught truth and dharma (the right conduct). We chant his name as Kalpavriksha (the giver of limitless material wealth) and bow before him as Kamadhenu (the giver of spiritual knowledge)."

"Though I am not an expert in Sanskrit, I have many friends who are proficient in Sanskrit. Sanskrit is a beautiful language.

It has enriched our society from time immemorial. Today many nations are trying to research Sanskrit writings which are there in our ancient scriptures. I understand that there is a wealth of knowledge available in Sanskrit which scientists and technologists are finding today," he said.

"There is a need to carry out research on our Vedas, particularly Atharva Veda, for eliciting valuable information in science and technology relating to medicine, flight sciences, material sciences and many other related fields. Cryptology is another area where Sanskrit language is liberally used," he added.

He suggested that the Sanskrit Vidyapeetham, apart from their academic activity, should take up the task of locating missing literature in Sanskrit available on palm leaves spread in different parts of the country so that these could be documented and preserved. He suggested that they should avail the help of digital technology for documenting those scriptures both in audio and video form which can be preserved as long term wealth for use by many generations.

He asked the Sanskrit Vidyapeetham to go into details of lives of great scholars, poets, epic creators like Valmiki, Veda Vyasa, Kalidasa and Panini. He wanted the Vidyapeetham to invite well-known Sanskrit scholars so that they can stay and interact with the students for a certain period. "This will provide an opportunity for students to interact and get enriched in Sanskrit and Vedas," he noted.

Date of Pubn. : 31.08.2014 Posted at - NIE - H.O. Postal Date : 2-3 Sep. 2014
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2014-2016

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुची वेनऽआवः।
स बुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठाः सत च योनिमसत च विवः।।
(यजु. 13/3)

ऋषि–वत्सारः, देवता–आदित्यः, छन्द–आर्षीत्रिष्टुप्

अर्थ–हे परमे वर आप 'जज्ञानम्' सारे संसार में व्याप्त हो। आप ही संपूर्ण जगत् के आदिकारण हो। सूर्यादि लोक 'सीमतः' सीमा से युक्त 'सरुची' आप से प्रकाा ित हैं। 'पुरस्तात्' इनको पहले रचकर आप इन्हें धारण कर रहे हैं और 'विआवः' इन लोकों को विविध नियमों से यथायोग्य वर्त रहे हो। 'वेनः' आप आनन्द स्वरूप हैं अतः सब आपकी कामना करते हैं और आपसे मिलना चाहते हैं। सभी प्रकार से आप रक्षक हैं। आप 'बुध्न्याः' अन्तरिक्ष में सभी दि ााओं को 'विवः' विभक्त करते हैं। वे अन्तरिक्ष आदि 'उपमा' सब व्यवहारों के उपयुक्त और विविध जगत् के निवास स्थान हैं। 'सत्' यह विद्यमान स्थूल जगत् 'असत्' अव्यक्त चक्षु आदि इन्द्रियों से अगोचर इस दो प्रकार के जगत् का 'योनि' आदिकारण आपको ही वेद ाास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं। अतः आप इस जगत् के माता–पिता और भजनीय इष्टदेव हो।

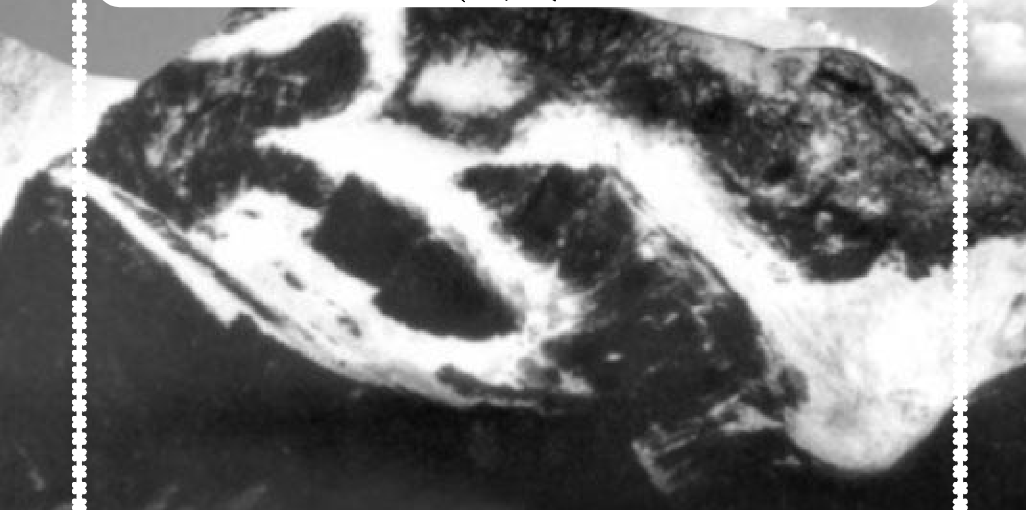

Oh Almighty God! You are the Greatest being in this Universe. Being manifest everywhere, You are pervading the whole universe. You alone are the First Cause of the whole world. The sun and other celestial bodies have their orbital limits prescribed by You. You illuminate them all. In fact all crave for union with You. You are protector of all creatures. The Vedic Lore and all learned and wise men say that You are the Source of this visible creation. Hence You are the Father and the Mother of all the world and our Adorable Deity.